वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का , घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : 32 (वीर नि. संवत् - 2540) 369 अंक : 9

ऐसो नर भव पाय...

ऐसो नर भव पाय गंवायो।।टेक।।
धनकूं पाय दान नहिं दीनो, चारित चित नहिं लायो।
श्री जिनदेव की सेव न कीनी, मानुष जन्म लजायो,
जगत में आयो न आयो, ऐसो नर भव पाय गंवायो।।1।।
विषय कषाय बढो प्रति दिन दिन, आतम बल सु घटायो।
तजि सतसंग भयो तू कुसंगी, मोक्ष कपाट लगायो,
नरक को राज कमायो, ऐसो नर भव पाय गंवायो।।2।।
रजकश्वान सम फिरत निरंकुश, मानत नाहिं मनायो।
त्रिभुवनपति होय भयो है भिखारी, यह अचरज मोहि आयो,
कहांते कनक फल खायो, ऐसो नर भव पाय गंवायो।।3।।
कंद मूल मद्य मांस भखन कूं, नित प्रति चित्त लुभायो।
श्री जिन बचन सुधा सम तजि कै, 'नयनानंद' पछतायो,
श्री जिन गुण नहीं गायो, ऐसो नर भव पाय गंवायो।।4।।

– कविवर नयनानंदजी

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी की 125वीं जन्मजयन्ती के अवसर पर पाठकों के लाभार्थ उनके प्रवचनों में से महत्वपूर्ण 125 अंशों को यहाँ क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है।

(1) साधु तो नग्न दिगम्बर छठवें-सातवें गुणस्थान की भूमिका में झूलते भावलिंगी वीतरागी सन्त ही होते हैं। हम तो सामान्य श्रावक हैं, साधु नहीं। हम तो साधुओं के दासानुदास हैं। अहा ! वीतरागी सन्त कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्र आदि मुनिवरों के स्मरण मात्र से हमारा रोमांच हो जाता है। **– आत्मधर्म : जुलाई 1976, पृष्ठ 4**

(2) प्रभु ! तू ज्ञानस्वरूप है, तू समझ सकता है – यही समझकर तुझे समझा रहे हैं। ''मैं नहीं समझ सकूँगा'' – यह शल्य ही तुझे समझने में बाधक है। भगवन्! यह बात मन से निकाल दे कि मैं नहीं समझ सकता। ऐसी उत्तम मनुष्य देह और सत् को समझने का यह उत्तम सुयोग मिला, फिर भी सत् न समझा जाय – यह कैसे हो सकता है ?

– आत्मधर्म : अगस्त 1976, पृष्ठ 19

(3) यदि तुझे वास्तव में आत्मा की रुचि उत्पन्न हुई हो तो संसार मात्र छोड़कर आत्मा के लिये ही जीवन अर्पण कर दे। ''अरे ! एक तो क्या, किन्तु यदि अनन्तानंत भव भी आत्मा के लिये देने पड़े तो उन्हें भी अर्पित करने को तैयार हूँ। चाहे जो हो, किन्तु मुझे तो आत्मा का हित करना ही है'' – इसप्रकार आत्मरुचि करके काल की मर्यादा को तोड़ दे।

– आत्मधर्म : सितम्बर 1976, पृष्ठ 19

(4) हे जीव ! तुझे उलझन हो तो पूर्वकालीन महापुरुषों के जीवन को याद कर। उन साधक संतों ने कैसे-कैसे प्रसंगों में भी अपनी आराधना बनाए रखी है – उनका स्मरण करके उनके उदाहरण से अपने आत्मा को भी आराधना में उत्साहित कर।

– आत्मधर्म : अक्टूबर 1976, पृष्ठ 2

(5) कौन किसका विरोध करता है ? अज्ञानवश सब अपना ही विरोध करते हैं। भाई ! मैं तो ज्ञानानन्दस्वभावी एक अनादि अनन्त ध्रुव आत्मा हूँ। मुझे वे (विरोध करने वाले) जानते ही कहाँ हैं? यदि वे मुझे वास्तविक रूप से जान लें तो विरोध ही न करेंगे। विरोध करने वाले अपनी पर्याय में अपनी आत्मा का ही विरोध कर रहे हैं। इस अमूल्य मनुष्य जीवन को आत्महित में न

लगाकर बैर-विरोध में लगाना – यह तो मनुष्य जीवन की सबसे बड़ी हार है। अपन तो किसी से बैर-विरोध रखते नहीं। कोई रखो तो रखो, उसमें हम क्या कर सकते हैं ?

– आत्मधर्म : नवम्बर 1976, पृष्ठ 3

(6) जगत के जीवों ने जगत को सन्तुष्ट करने के लिए, उसे प्रसन्न रखने के लिये तो सब कुछ अनन्त बार किया है; किन्तु ''मैं (आत्मा) यथार्थ रूप से कैसे सन्तुष्ट होऊँ और मेरे आत्मा को सचमुच क्या रुचता है'' – उसका कभी विचार तक नहीं किया, कभी दरकार तक नहीं की। जिसे सचमुच आत्मा को सन्तुष्ट करने की अभिलाषा जागृत हुई है, वह उसे अवश्य सन्तुष्ट करके ही रहेगा और उसे सन्तुष्ट होना अर्थात् आनन्दधाम में पहुँचना ही होगा।

– आत्मधर्म : दिसम्बर 1976, पृष्ठ 2

(7) काल की ओर क्या देखते हो ? अपनी ओर देखो। अनुकूल-प्रतिकूल वातावरण तो बनता-बिगड़ता ही रहता है, उसका ही चिन्तवन करोगे तो आकुलता ही उत्पन्न होने वाली है। अच्छे कार्यों में तो विघ्न आते ही हैं। पण्डित टोडरमलजी के समय में भी उनकी आलोचना करने वाले कम न थे। उन्हें तो अपने प्राण भी गँवाने पड़े। आज का वातावरण कैसा भी हो, पण्डित टोडरमलजी जैसा तो नहीं। जगत पर से दृष्टि हटाकर अपनी ओर देखो। वहाँ ही अपूर्व शान्ति मिलेगी। **– आत्मधर्म : जनवरी 1977, कवर पृष्ठ 3**

(8) भाई हम क्या करते हैं ? अपना अध्ययन-मनन-चिन्तन और दो बार प्रवचन – बस ! इसमें ही जिनका काल पकता है, आत्मा में जिनकी रुचि जागृत होती है, जो पुरुषार्थ करते हैं, वे तैयार हो जाते हैं, हम क्या करते हैं ? सब अपने से तैयार होते हैं, हम कुछ नहीं करते।

– आत्मधर्म : फरवरी 1977, पृष्ठ 4

(9) चाहे जैसा बढिया भोजन हो; किन्तु जिसे भूख ही न लगी हो, उसे कैसे भायेगा ? उसीप्रकार जिसे भव की थकान का अनुभव नहीं होता तथा आत्मा की भूख नहीं लगी है, उसे तो आत्मा के आनन्द की बात सुनने में भी अच्छी नहीं लगती, उसकी रुचि जागृत नहीं होती। **– आत्मधर्म : मार्च 1977, पृष्ठ 2**

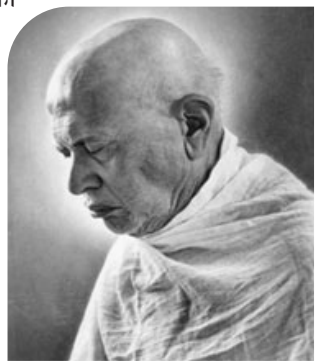

(10) तेरा आत्मा ही ऐसा आनन्दस्वरूप है, जिसे जानने से उसमें तन्मय होकर परम सुख का स्वाद आता है। परोन्मुख होकर पर को जानने से सुख का वेदन नहीं होता। आत्मा ही स्वयं ऐसा सारभूत है कि जिसे जानने से सुख प्राप्त होता है; अत: एक आत्मा को ही जान, उसका ही अनुभव कर, उसमें ही जम जा; तू भी भगवान बन जायेगा। स्वभाव से तो भगवान है ही, पर्याय में भी बन जायेगा।

– आत्मधर्म : अप्रैल 1977, पृष्ठ 2

सम्पादकीय

तत्त्वार्थमणिप्रदीप

(आचार्य उमास्वामी कृत तत्त्वार्थसूत्र की टीका)

(गतांक से आगे)

सम्यग्दर्शन

ये सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र क्या हैं ? – ऐसा पूछे जाने पर सर्वप्रथम सम्यग्दर्शन का स्वरूप समझाते हैं–

तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ।।२।।

तत्त्वार्थ का श्रद्धान ही सम्यग्दर्शन है।

तत्त्वार्थ पद **तत्त्व** और **अर्थ** – इन दो शब्दों से मिलकर बना है। इनमें **तत्त्व शब्द भाववाची है** और **अर्थ शब्द वस्तुवाची है।**

तात्पर्य यह है कि किसी वस्तु को जानने के लिए उस वस्तु के साथ उसके भाव को भी जानना चाहिए।

जिसप्रकार किसी धातु से निर्मित विशिष्ट आकार वाला गिलास नामक एक वस्तु है और जलादि तरल पदार्थों को धारण करना उसका भाव है, कार्य है।

यदि कोई व्यक्ति उस वस्तु को, वस्तु के आकार-प्रकार को; भाव सहित जानता है तो वह उस वस्तु या उस जैसी वस्तु से अपने प्रयोजन को साध लेगा। तात्पर्य यह है कि किसी **वस्तु की पहिचान तभी सच्ची होगी, जब हम उस वस्तु को भी जाने और उसके भाव (कार्य) को भी जाने। इसप्रकार भाव सहित वस्तु ही तत्त्वार्थ है।**

आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी की दृष्टि में तत्त्वार्थ का भाव इसप्रकार है –

''यहाँ यदि तत्त्वश्रद्धान ही कहते तो जिसका यह भाव (तत्त्व) है, उसके श्रद्धान बिना केवल भाव ही का श्रद्धान कार्यकारी नहीं है। तथा यदि अर्थश्रद्धान ही कहते तो भाव के श्रद्धान बिना पदार्थ का श्रद्धान भी कार्यकारी नहीं है।

जैसे – किसी को ज्ञान-दर्शनादिक व वर्णादिक का तो श्रद्धान हो; – यह जानपना है, यह श्वेतपना है, इत्यादि प्रतीति हो; परन्तु ज्ञान-दर्शन आत्मा का स्वभाव है, मैं आत्मा हूँ; तथा वर्णादि पुद्गल का स्वभाव है, पुद्गल मुझसे भिन्न-अलग पदार्थ है; ऐसा पदार्थ का श्रद्धान न हो तो भाव का श्रद्धान कार्यकारी नहीं है।

तथा जैसे 'मैं आत्मा हूँ' – ऐसा श्रद्धान किया; परन्तु आत्मा का स्वरूप जैसा है, वैसा श्रद्धान नहीं किया तो भाव के श्रद्धान बिना पदार्थ का भी श्रद्धान कार्यकारी नहीं है। इसलिए तत्त्व सहित अर्थ का श्रद्धान होता है सो ही कार्यकारी है। अथवा जीवादिक को तत्त्वसंज्ञा भी है और अर्थ संज्ञा भी है। इसलिए **'तत्त्वमेवार्थस्तत्त्वार्थः'** जो तत्त्व है, सो ही अर्थ है; उनका श्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है।

इस अर्थ द्वारा कहीं तत्त्वश्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहे और कहीं पदार्थश्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहे, वहाँ विरोध नहीं जानना।[१]''

टोडरमलजी के उक्त कथन से यह बात अत्यन्त स्पष्ट है कि न तो अकेले अर्थ (वस्तु) का श्रद्धान कार्यकारी है और न अकेले तत्त्व (भाव) का श्रद्धान ही कार्यकारी है। अतः **जैनदर्शन में कहीं तत्त्वश्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहा हो या कहीं अर्थश्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहा हो; उसका भाव तत्त्वार्थ के रूप में ही ग्रहण करना चाहिए।**

समयसार में भूतार्थनय से जाने हुए नव तत्त्वों को ही सम्यग्दर्शन कहा है।[२] भूतार्थनय का आशय निश्चयनय से है। तात्पर्य यह है कि **हमें यदि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति करनी है तो निश्चयनय से तत्त्वार्थों को भलीभाँति समझना चाहिए।**

यहाँ एक प्रश्न संभव है कि समयसार में अकेले भूतार्थनय से जाने हुए नव तत्त्वों को सम्यग्दर्शन कहा और यहाँ जीवादि तत्त्वार्थों के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहा और उनके अधिगम के उपाय के रूप में प्रमाण और नयों को प्रस्तुत किया है; इससे स्पष्ट है कि यहाँ प्रमाण व नयों से जाने हुए जीवादि तत्त्वार्थों के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहा जा रहा है। इसप्रकार इन दोनों कथनों में मतभेद क्यों है, अन्तर क्यों है ?

इसप्रकार के प्रश्न का उत्तर समयसार अनुशीलन भाग १ में इसप्रकार दिया गया है –

''यह मतभेद नहीं, विवक्षाभेद है। यदि दोनों कथनों की विवक्षायें समझ ली जावें तो कोई आशंका नहीं रहेगी।

तत्त्वार्थसूत्र का कथन सैद्धान्तिक कथन है और समयसार का कथन आध्यात्मिक कथन है। तत्त्वार्थसूत्रकर्ता को सप्त तत्त्वार्थों का प्रमाण और नयों से गुण-पर्याय सहित, सर्वांग विवेचन अभीष्ट था, जैसा कि उन्होंने आगे किया भी है।

जीवों के संसारी-सिद्ध सभी भेद बताये, उनके रहने के स्थानों की चर्चा की।

१. मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ ३१६ २. समयसार, गाथा १३

अजीवादि तत्त्वों का भी इसीप्रकार विस्तृत विवेचन किया। आस्रव में सत्तावन प्रकार के आस्रव बताये, उनके शुभाशुभभेद करके व्रतों का वर्णन भी किया। बंधतत्त्व में कर्मों की प्रकृतियाँ गिनाईं, निर्जरा में भी उसके उपायों की विस्तृत समीक्षा की। पर समयसार में यह सब नहीं है, समयसार की प्रतिपादनशैली ही अलग है। **समयसार में तो सभी तत्त्वों में प्रकाशमान आत्मज्योति को ही खोजा गया है।**

सर्वत्र आत्मज्योति को खोजना भूतार्थनय का ही कार्य है। भूतार्थनय ही यह महान कार्य कर सकता है। अत: समयसार के आरंभ में ही, इस तेरहवीं गाथा में ही यह घोषित कर दिया कि भूतार्थनय से जाने हुए जीवादि नव तत्त्व ही सम्यग्दर्शन हैं और आगे सभी तत्त्वों की मीमांसा भी इसी नय से प्रस्तुत की है, सर्वत्र आत्मज्योति को ही खोजा गया है।

रही बात तत्त्वों की संख्या में सात और नौ के अन्तर की, सो यह कोई बात नहीं है; क्योंकि तत्त्वार्थसूत्र में पुण्य और पाप को आस्रव-बंध में शामिल कर लिया गया है और समयसार में उन्हें अलग कह दिया गया है। – बस इतनी ही बात है।[१]''

विभिन्न शास्त्रों में सम्यग्दर्शन की विभिन्न प्रकार की अनेक परिभाषायें प्राप्त होती हैं, जिनमें चार प्रमुख हैं; जो इसप्रकार है –

१. जीवादि तत्त्वार्थों का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है।

२. आपापर का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है।

३. आत्मश्रद्धान सम्यग्दर्शन है।

४. देव-शास्त्र-गुरु का श्रद्धान या देव-गुरु-धर्म का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है।

इन सबका समन्वय पण्डित टोडरमलजी के मोक्षमार्गप्रकाशक में विस्तार से किया है; जो मूलत: पठनीय है।

मोक्षमार्गप्रकाशक के उक्त प्रकरण में न केवल सम्यग्दर्शन की चारों परिभाषाओं में सहेतुक समन्वय स्थापित किया है, अपितु वहाँ तत्त्वार्थसूत्र में समागत तत्त्वार्थश्रद्धान नामक परिभाषा की मुख्यता क्यों की है – यह भी बताया है।[१]

लगभग ८ पृष्ठों का उक्त प्रकरण विस्तार भय से यहाँ देना संभव नहीं है; अत: यहाँ यह अनुरोध किया जा रहा है कि जिन लोगों को उक्त विषय में विशेष जिज्ञासा हो, उन्हें उक्त प्रकरण का स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए।

यद्यपि दर्शन शब्द का अर्थ **देखना** होता है, **सामान्य अवलोकन** होता है;

१. समयसार अनुशीलन भाग-१, पृष्ठ १४५-१४६

तथापि यहाँ मोक्षमार्ग का प्रकरण होने से दर्शन शब्द का प्रयोग श्रद्धान के अर्थ में हुआ है। श्रद्धान का अर्थ प्रतीति है, विश्वास है; इसप्रकार **तत्त्वार्थ की प्रतीति ही सम्यग्दर्शन है।**

तत्त्वार्थों को जाने बिना प्रतीति संभव नहीं है; यही कारण है कि आगे तत्त्वार्थों के नाम गिनाकर उन्हें जानने के उपायों की चर्चा आरंभ करेंगे।

उक्त तत्त्वार्थों को जानकर उनके श्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति किस प्रकार होती है – स्वभाव से या अधिगम से अर्थात् अपने आप या परोपदेश से।

अब आगामी सूत्र में उक्त संदर्भ में वस्तुस्थिति को स्पष्ट करेंगे।।२।।

सम्यग्दर्शन के : उत्पत्ति की अपेक्षा भेद

यद्यपि यहाँ दूसरे सूत्र के अनुसार तत्त्वार्थ की चर्चा प्रसंग प्राप्त है; तथापि आचार्य यहाँ तत्त्वार्थों की चर्चा करने से पहले उक्त सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति के बारे में दिशा-निर्देश करना आवश्यक समझते हैं, जो इसप्रकार है –

तन्निसर्गादधिगमाद्वा ।।३।।

वह सम्यग्दर्शन दो प्रकार से उत्पन्न होता है – प्रथम निसर्ग से, स्वभाव से अर्थात् स्वयं से और दूसरा अधिगम से, ज्ञान से, परोपदेश से।

इसप्रकार उत्पत्ति की अपेक्षा सम्यग्दर्शन दो प्रकार का हो गया –

१. निसर्गज और २. अधिगमज।

यद्यपि यह अकाट्य सत्य है कि देशनालब्धि के बिना सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति नहीं होती; तथापि निसर्गज सम्यग्दर्शन और अधिगमज सम्यग्दर्शन में अन्तर मात्र इतना ही है कि निसर्गज सम्यग्दर्शनवालों को वह देशनालब्धि पूर्वभव में प्राप्त हो जाती है और उसके संस्कार के निमित्त से **वर्तमान भव में साक्षात् उपदेश के बिना ही सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो जाती है। इसप्रकार हुए सम्यग्दर्शन को निसर्गज सम्यग्दर्शन कहते हैं।**

जिन जीवों को इसी भव में देव-शास्त्र-गुरु या ज्ञानी धर्मात्माओं के उपदेशपूर्वक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है; उनके उस सम्यग्दर्शन को अधिगमज सम्यग्दर्शन कहते हैं।

दोनों प्रकार के सम्यग्दर्शनों में परपदार्थों से भिन्न निज भगवान आत्मा में अपनेपनरूप दृढ प्रतीतिरूप उपादान और अनंतानुबंधी क्रोध- मान-माया-लोभ

१. मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ ३२३ से ३३० तक

और मिथ्यात्व का क्षय, क्षयोपशम अथवा उपशमरूप अंतरंग निमित्त तो समानरूप से पाये ही जाते हैं; मात्र परोपदेशरूप बाह्य निमित्त में ही इतना अन्तर होता है कि निसर्गज सम्यग्दर्शन में पूर्वभव में प्राप्त उपदेश का संस्कार बाह्य निमित्त होता है और अधिगमज सम्यग्दर्शन में इसी भव में प्राप्त परोपदेशरूप बाह्य निमित्त होता है।

अरे, भाई ! सम्यग्दर्शन तो सम्यग्दर्शन है; वह निसर्ग से, स्वभाव से हुआ या परोपदेश से – इससे उसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता।

यहाँ तो मात्र यह बताया गया है कि वह सम्यग्दर्शन किसी को पूर्वभव के संस्कार के निमित्त से स्वत: हो जाता है और किसी को सद्गुरु के सत्समागम से सदुपदेश पूर्वक होता है।

तात्पर्य यह है कि सम्यग्दर्शनरूप कार्य का; स्वभाव का नियामक त्रिकाली उपादानरूप कारण तो स्वयं का आत्मा या उसका श्रद्धा गुण है; विधि/प्रक्रिया का नियामक, क्षणिक उपादान नम्बर एक अनन्तरपूर्व-क्षणवर्ती पर्याय के व्ययरूप आत्मोन्मुखी पुरुषार्थ है तथा काल का नियामक क्षणिक उपादान नम्बर दो तत्समय की योग्यता है।

इसप्रकार सम्यग्दर्शन के उत्पन्न होनेरूप कार्य का; स्वभाव का नियामक आत्मा का श्रद्धागुणरूप त्रिकाली उपादान, विधि या प्रक्रिया का नियामक अनन्तरपूर्वक्षणवर्ती पर्याय के व्ययरूप क्षणिक उपादान नम्बर एक एवं काल का नियामक तत्समय की योग्यतारूप क्षणिक उपादान नम्बर दो है।

जब उक्त उपादानों के बल पर अन्तरोन्मुखी पुरुषार्थपूर्वक सम्यग्दर्शन रूप कार्य उत्पन्न हो रहा होता है; तब निमित्त के रूप में तत्संबंधी कर्म का उपशम, क्षयोपशम अथवा क्षयरूप अंतरंग निमित्त तो होता ही है।

बाह्य निमित्त के रूप में यदि पूर्वकाल में प्राप्त उपदेश का संस्कार निमित्त हो तो उसे निसर्गज सम्यग्दर्शन कहते हैं और वर्तमान में प्राप्त परोपदेश निमित्त हो तो उसे अधिगमज सम्यग्दर्शन कहते हैं।

इसप्रकार निसर्गज और अधिगमज सम्यग्दर्शन में मात्र बहिरंग निमित्त का ही अन्तर है; तीनों उपादानकारण और अंतरंग निमित्त तो समान ही हैं।।३।।

सात तत्त्वार्थ

दूसरे सूत्र में तत्त्वार्थश्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहा था। अत: यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है कि **तत्त्वार्थ कितने प्रकार के होते हैं और वे कौन-कौन हैं ?** उक्त प्रश्न के उत्तर में कहते हैं –

जीवाजीवास्रवबंधसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम् ।।४।।

जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष – ये सात तत्त्व हैं। यद्यपि पुण्य और पाप तत्त्व आस्रव व बंध में शामिल हैं; तथापि यदि उनका पृथक् से उल्लेख करें तो इन्हें मिलाकर तत्त्व नौ प्रकार के हो जाते हैं।

यहाँ एक **प्रश्न** संभव है कि सम्यग्दर्शन की परिभाषा में तो **तत्त्वार्थों** की चर्चा की गई थी; पर यहाँ तो **तत्त्वों** की बात की जा रही है।

उत्तर – बात एक ही है। यहाँ तत्त्वार्थों को ही तत्त्व कहा जा रहा है। पूर्व में हम यह स्पष्ट कर चुके हैं कि चाहे हम तत्त्व कहें, चाहें अर्थ कहें या फिर तत्त्वार्थ कहें – इस प्रकरण में तीनों का अर्थ एक ही समझना चाहिए।

प्रश्न – पुण्य और पाप आस्रव-बंध में किसप्रकार शामिल होते हैं?

उत्तर – आस्रव भी दो प्रकार का होता है और बंध भी दो प्रकार का होता है। वह इसप्रकार है –

१. पुण्यास्रव और २. पापास्रव। १. पुण्यबंध और २. पापबंध।

इसे हम इसप्रकार समझ सकते हैं –

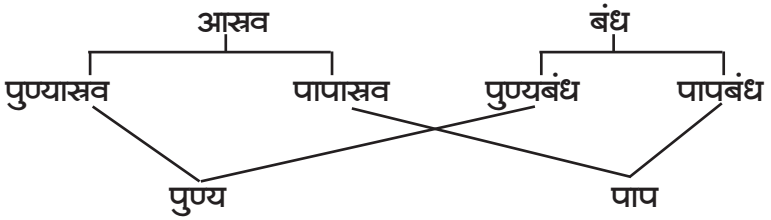

इसे हम इस रूप में भी समझ सकते हैं –

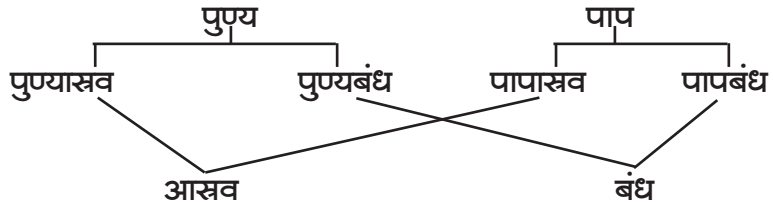

यद्यपि यहाँ सात या नौ तत्त्व ही कहे हैं; तथापि उक्त नौ तत्त्व भी हैं, अर्थ भी हैं और तत्त्वार्थ भी हैं। यहाँ इस सूत्र में तत्त्वार्थों के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहा है; अत: यहाँ तत्त्वार्थ ग्रहण करना ही उचित है।

इन तत्त्वार्थों का सामान्य स्वरूप इसप्रकार है –

१. जीव – ज्ञान-दर्शनस्वभावी/ज्ञानानंदस्वभावी आत्मा को जीव तत्त्व अथवा जीव तत्त्वार्थ कहते हैं।

२. अजीव – ज्ञान-दर्शनस्वभाव से रहित तथा आत्मा से भिन्न समस्त पुद्गलादि पदार्थ अजीव तत्त्व या अजीव तत्त्वार्थ हैं।

इन शरीरादि सभी पदार्थों से भिन्न चेतन तत्त्व आत्मा ही जीव है। वह आत्मारूप जीव मैं ही हूँ। मुझसे भिन्न सभी पुद्गलादि पदार्थ अजीव हैं।

इसप्रकार सामान्य से तो जीव और अजीव – ये दो द्रव्य पदार्थ ही तत्त्वार्थ हैं। आस्रवादिक तो इन जीव-अजीव तत्त्वार्थों के सम्मिलित विशेष हैं।

तत्त्वार्थ दो प्रकार के होते हैं – द्रव्य तत्त्वार्थ और पर्याय तत्त्वार्थ। जीव और अजीव द्रव्यरूप तत्त्वार्थ हैं और शेष आस्रवादिक पर्यायरूप तत्त्वार्थ हैं।

पर्यायरूप तत्त्वार्थ द्रव्य और भाव के भेद से दो प्रकार के होते हैं। उन्हें हम इसप्रकार जान सकते हैं –

१. भावास्रव और द्रव्यास्रव
२. भावबंध और द्रव्यबंध
३. भावसंवर और द्रव्यसंवर
४. भावनिर्जरा और द्रव्यनिर्जरा
५. भावमोक्ष और द्रव्यमोक्ष
६. भावपुण्य और द्रव्यपुण्य
७. भावपाप और द्रव्यपाप

इनका स्वरूप इसप्रकार है –

१. भावास्रव और द्रव्यास्रव – जिन मोह-राग-द्वेषरूप भावों के निमित्त से ज्ञानावरणादि कर्म आते हैं, उन मोह-राग-द्वेष भावों को तो भावास्रव कहते हैं और उसके निमित्त से कार्माणवर्गणाओं का ज्ञानावरणादि कर्मोंरूप परिणमना द्रव्यास्रव है।

२. भावबंध और द्रव्यबंध – मोह-राग-द्वेष, पुण्य-पाप आदि विभाव भावों में आत्मा का रुक जाना भावबंध है और उसके निमित्त से कार्माणवर्गणारूप पुद्गल का स्वयं कर्मरूप होकर आत्मा से बंधना – एकक्षेत्रावगाहरूप होना द्रव्यबंध है।

३. भावसंवर और द्रव्यसंवर – पुण्य-पाप के विकारी भावों (आस्रव) को आत्मा के शुद्ध (वीतरागी) भावों से रोकना, वीतरागभाव रूप परिणमना भावसंवर है और तदनुसार नये कर्मों का स्वयं आना रुक जाना द्रव्यसंवर है।

४. भावनिर्जरा और द्रव्यनिर्जरा – ज्ञानानन्दस्वभावी आत्मा के लक्ष्य के बल से स्वरूपस्थिरता की वृद्धि द्वारा आंशिक शुद्धि की वृद्धि और अशुद्ध (शुभाशुभ) अवस्था का आंशिक नाश होना, सो भाव-निर्जरा है और उसका निमित्त पाकर जड़ कर्म का अंशत: खिर जाना, सो द्रव्यनिर्जरा है।

५. भावमोक्ष और द्रव्यमोक्ष – अशुद्ध दशा का सर्वथा सम्पूर्ण नाश होकर आत्मा की पूर्ण निर्मल पवित्र दशा का प्रकट होना, भाव-मोक्ष है और उसके निमित्त से द्रव्यकर्म का सर्वथा नाश (अभाव) होना, द्रव्यमोक्ष है।

६. भावपुण्य और द्रव्यपुण्य – अघाति कर्मों की पुण्य प्रकृतियों के बँधने में आत्मा के जो दया-दानादि शुभभाव निमित्त हैं; वे शुभभाव भावपुण्य हैं और उनके निमित्त से अघाति कर्मों की जो पुण्य प्रकृतियाँ बँधती हैं; वे द्रव्यपुण्य हैं।

७. भावपाप और द्रव्यपाप – आत्मा के जिन मोह, द्वेष और अशुभरागरूप भावों से घातिकर्म और अघातिकर्म की पाप प्रकृतियोंरूप द्रव्यपापों का बंध होता है, वे भाव भावपाप हैं। ज्ञानावरणादि चार घातिकर्म और अघातिकर्मों की पाप प्रकृतियाँ द्रव्यपाप हैं।

पुण्य और पाप, आस्रव-बंध के ही अवान्तर भेद हैं। शुभ राग से पुण्य का आस्रव और बंध होता है और अशुभ राग, द्वेष और मोह से पाप का आस्रव और बंध होता है।

जीव और अजीव द्रव्यतत्त्व हैं, मूलतत्त्व हैं; अत: उन्हें सर्वप्रथम रखा गया। उसके बाद संसारपूर्वक मोक्ष होने के कारण पहले संसार के कारणरूप आस्रव और बंध, उसके बाद मुक्ति के कारणरूप संवर और निर्जरा – इन पर्यायतत्त्वों को रखा गया है। अन्त में मुक्ति होने से मोक्षतत्त्व को अन्त में रखा गया है।

सर्वप्रथम जीव और उसके बाद जीव के अभावस्वरूप होने से अजीव को रखा गया। उसके बाद आस्रवपूर्वक बंध होने से पहले आस्रव और उसके बाद बंध को रखा गया। इसीप्रकार संवरपूर्वक निर्जरा होने से संवर को पहले और निर्जरा को बाद में रखा गया तथा संवर-निर्जरापूर्वक होने से मोक्ष को उनके बाद रखा गया है अथवा अन्त में प्राप्त होने से मोक्ष को अन्त में रखा गया है।

इस सूत्रग्रन्थ में जीवादि तत्त्वों को जिस क्रम में रखा गया है; उसी क्रम में अध्यायों को रखा गया है; जो इसप्रकार है –

आरंभ के **चार अध्यायों में जीव तत्त्वार्थ का, पाँचवें अध्याय में पुद्गलादि अजीव तत्त्वार्थों का, छठवें-सातवें अध्याय में आस्रव का, आठवें अध्याय में**

बंध का, नौवें अध्याय में संवर-निर्जरा का और दशवें अध्याय में मोक्ष तत्त्वार्थ का वर्णन है।

प्रश्न – प्रस्तुत ग्रन्थ तत्त्वार्थसूत्र में सात तत्त्वों का जो क्रम प्रस्तुत किया गया है; ऐसा क्रम समयसार में क्यों नहीं ?

उत्तर – समयसार के अधिकारों के क्रम के संदर्भ में समयसार अनुशीलन का निम्नांकित अंश दृष्टव्य है –

''अत: यहाँ समयसार में समागत क्रम के औचित्य की समीक्षा भी आवश्यक है। उक्त संदर्भ में हमें आत्मख्याति से मार्गदर्शन प्राप्त होता है। **आत्मख्याति टीका में आचार्य अमृतचन्द्र ने इसे नाटक के रूप में प्रस्तुत किया है। नाटक के मंच पर जोड़ों (युग्मों) की प्रधानता रहती है। इसके अधिकारों के चयन में भी जोड़ों को ध्यान में रखा गया है।** जैसे – जीव-अजीव, कर्ता-कर्म, पुण्य-पाप, आस्रव-संवर, बंध-मोक्ष। चूँकि तत्त्व नौ हैं; अत: एक को तो बिना जोड़े का रहना ही था। इसकारण निर्जरा तत्त्व बिना जोड़े के रह गया है और सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार तो स्वतंत्र है ही।

यद्यपि कर्ता-कर्म और सर्वविशुद्धज्ञान – ये दो नव तत्त्वों में नहीं आते हैं, तथापि इनके संदर्भ में जनसामान्य में बहुत अज्ञान रहता है। इस अज्ञान का निवारण किए बिना आत्मतत्त्व को सही रूप में समझ पाना संभव नहीं है। अत: इन्हें भी समयसार में स्थान प्राप्त हुआ है।

कर्ता-कर्म अधिकार को जीवाजीवाधिकार के तत्काल बाद क्यों रखा गया है ? यहाँ यह प्रश्न उठना भी स्वाभाविक है।

कर्ता-कर्म संबंधी भूल प्रकारान्तर से जीव-अजीव संबंधी भूल ही है; क्योंकि जीव को अजीव का और अजीव को जीव का कर्ता-भोक्ता मानना भी जीव-अजीव संबंधी भूल ही है। इसकारण इसे जीवाजीवाधिकार के तत्काल बाद रखा गया है।[१]''

इनमें से जीव तत्त्वार्थ श्रद्धेय, ज्ञेय और ध्येय है। अजीव तत्त्वार्थ मात्र ज्ञेय है। आस्रव, बंध हेय हैं तथा पुण्य और पाप भी आस्रव-बंधरूप होने से हेय ही हैं। संवर और निर्जरा प्रगट करने की अपेक्षा एकदेश उपादेय हैं और मोक्ष सर्वदेश उपादेय है।

इसप्रकार यह सात या नौ तत्त्वार्थों का सामान्य स्वरूप है। विशेष स्वरूप विस्तार से यथास्थान आगे आनेवाला ही है।।४।।

---

१. समयसार अनुशीलन भाग-१, पृष्ठ १४२-१४३

चार निक्षेप

उक्त जीवादि सात तत्त्वार्थों और सम्यग्दर्शन आदि रत्नत्रय को किसप्रकार से जानना चाहिए – इस बात को स्पष्ट करते हुए आगामी सूत्र में चार निक्षेपों की चर्चा आरंभ करते हैं।

प्रमाण और नयों के अनुसार प्रचलित लोकव्यवहार को निक्षेप कहते हैं।

निक्षेपों का प्रतिपादक सूत्र इसप्रकार है –

नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यास: ।।५।।

नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव – इन चार निक्षेपों से उक्त सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय और सात या नौ तत्त्वार्थों का न्यास अर्थात् प्रतिपादन होता है, लोकव्यवहार संचालित होता है।

निक्षेपों का सामान्य स्वरूप इसप्रकार है –

१. गुण-दोष आदि की अपेक्षा बिना किसी स्थान, व्यक्ति या वस्तु का नामकरण करना **नामनिक्षेप** है।

२. 'यह वह है' – इसप्रकार अन्य वस्तु में किसी अन्य वस्तु का प्रतिनिधित्व स्थापित करना **स्थापनानिक्षेप** है।

३-४. अतीत और भावी पर्यायों का वर्तमान में स्थापित करना **द्रव्यनिक्षेप** है और वर्तमान पर्यायरूप वस्तु को वर्तमान में स्थापित करना **भावनिक्षेप** है।

१. नाम निक्षेप को समझाने के लिए इसप्रकार के उदाहरण दिये जाते रहे हैं कि कुरूप व्यक्ति का सुन्दरलाल नाम, निर्धन व्यक्ति का धनपाल नाम, साधारण व्यक्ति का राजाराम नाम **नामनिक्षेप** के उदाहरण हैं।

यद्यपि ये उदाहरण गलत नहीं हैं; तथापि इनसे ऐसा लगता है कि जान-बूझकर गलत बात कही जा रही है। नामनिक्षेप के कथन में सुन्दरलाल का कुरूप होना जरूरी नहीं है, वह सुन्दर भी हो सकता है।

वस्तुत: बात यह है कि नामनिक्षेप की दृष्टि से जो नामकरण किया जाता है; उसमें किसी गुण-दोष आदि की अपेक्षा नहीं रखी जाती। अत: कुरूप या सुन्दर किसी भी व्यक्ति का नाम सुन्दरलाल रखा जा सकता है। बात मात्र इतनी ही है कि लोक व्यवहार चलाने के लिए प्रत्येक स्थान, व्यक्ति या वस्तु का नाम होना आवश्यक है।

गुण-दोष आदि का विचार किये बिना उस स्थान, वस्तु या व्यक्ति को जिस नाम से कहने लगें, नामनिक्षेप से उसका वही नाम हो जाता है।

तात्पर्य यह है कि नामनिक्षेप में 'यथा नाम तथा गुण' का सिद्धान्त लागू नहीं

होता; क्योंकि राजा तो अपने बेटे का नाम राजकुमार रखता ही है; **सेवक भी अपने बेटे का नाम राजकुमार ही रखता है, सेवककुमार नहीं।**

२. स्थापनानिक्षेप में व्यवहार चलाने के लिए एक व्यक्ति की अन्य व्यक्ति या वस्तु में स्थापना कर ली जाती है। यह स्थापना दो प्रकार की होती है – १. तदाकार स्थापना, २. अतदाकार स्थापना।

(क) भगवान महावीर के आकार की संगमरमर की मूर्ति में भगवान महावीर की स्थापना करना, प्रतिष्ठा करना तदाकार स्थापना है।

जैनसमाज में होनेवाले पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव **तदाकार स्थापना के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं।**

(ख) शतरंज के खेल में बिना किसी आकार की सामान्य सी पत्थर की गोटियों में हाथी, ऊँट और घोड़े की कल्पना करना **अतदाकार स्थापना है।**

जब किसी व्यक्ति या वस्तु में किसी अन्य की स्थापना कर ली जाती है तो उसे उसकी प्रतिष्ठा प्राप्त हो जाती है।

नामनिक्षेप और स्थापनानिक्षेप में मूलभूत यही अन्तर है कि नाम-निक्षेप में पूज्यापूज्यत्व का व्यवहार नहीं होता, जबकि स्थापनानिक्षेप में पूज्यापूज्यत्व का व्यवहार होता है।

किसी भी प्रतिष्ठित मूर्ति की पूजा उस मूर्तिमान व्यक्ति के समान ही की जाती है, जिसकी उसमें प्रतिष्ठा की गई है।

३. भूत और भावी पर्याय की मुख्यता से वर्तमान में कहना **द्रव्यनिक्षेप** है। भूतकाल में पूजा करनेवाले पुरुष को वर्तमान में पुजारी कहना और भविष्य में राजा बननेवाले राजपुत्र को वर्तमान में राजा कहना **द्रव्यनिक्षेप के उदाहरण हैं।**

४. मात्र वर्तमान पर्याय की मुख्यता से अर्थात् वर्तमान में जो जैसा है; उसको उसीरूप से कहना **भावनिक्षेप** है। जब कोई व्यक्ति पूजा कर रहा हो, तब उसे पुजारी कहना **भावनिक्षेप का उदाहरण है।**

इसप्रकार हम अपने जीवन में निरंतर इन निक्षेपों का प्रयोग करते रहते हैं।

एक जिन शब्द में चारों निक्षेपों का प्रयोग जिसमें है; ऐसी एक गाथा जिनागम में प्राप्त होती है; जो इसप्रकार है –

णामजिणा जिणणामा, ठवण जिणा पुण जिणंदपडियाओ।
दव्वजिणा जिणजीवा, भावजिणा समवसरणत्था।।

जिनेन्द्रदेव के गुणों की अपेक्षा न करके किसी का जिन नाम रखना **नामजिन** है; जिनप्रतिमा **स्थापनाजिन** है; भव्यात्मा शक्ति अपेक्षा जिन होने से **द्रव्यजिन** है और समवसरण में स्थित जिनेन्द्रदेव **भावजिन** हैं।

यहाँ यह कहा जा रहा है कि इन सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय और जीवादि तत्त्वार्थों-पदार्थों को उक्त निक्षेपों के आधार पर समझो-समझाओ, समझने-समझाने का व्यवहार करो; ऐसा करने से इन तत्त्वार्थों की सच्ची समझ बनती है।

नाम, स्थापना और द्रव्य निक्षेप द्रव्यार्थिकनय के विषय हैं और भाव निक्षेप पर्यायार्थिकनय का विषय है।[१]

उक्त निक्षेपों की सही जानकारी प्राप्त होने पर सम्यग्दर्शनादि और जीवादि पदार्थों का उक्त निक्षेपों के अनुसार जो व्यवहार कथन होता है; उसका भाव ख्याल में आ जाता है।।५।।

प्रमाण-नय

सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय और जीवादि तत्त्वार्थों को जानने का उपाय क्या है? उक्त प्रश्न का समुचित उत्तर निम्नांकित सूत्र से प्राप्त होता है।

प्रमाणनयैरधिगमः।।६।।

प्रमाण और नयों के द्वारा उक्त सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय और जीवादि तत्त्वार्थों का ज्ञान होता है।

अभिनव धर्मभूषणयति की न्यायदीपिका के अनुसार **सम्यग्ज्ञान ही प्रमाण है।**

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान और केवलज्ञान – ये पाँचों ही सम्यग्ज्ञान प्रमाणज्ञान हैं; पर श्रुतज्ञान प्रमाणज्ञान होने के साथ-साथ नयज्ञानरूप भी होता है। **श्रुतविकल्पा नयाः** – ऐसा आगम का वचन है।

प्रश्न – उक्त सूत्र में **प्रमाण** के पहले **नय** पद को रखना चाहिए; क्योंकि नय पद में कम मात्राएँ हैं। जिस पद में कम मात्राएँ होती हैं, उसे पहले रखा जाता है – ऐसा व्याकरणशास्त्र का नियम है।

उत्तर – 'पूज्य को पहले रखा जाता है' – इस नियम के अनुसार यहाँ प्रमाण पद को पहले रखा है। नय से प्रमाण अधिक पूज्य है; क्योंकि जो सम्यग्ज्ञान वस्तु के सर्वदेश को जानता है, उसे **प्रमाणज्ञान** कहते हैं और वस्तु के एकदेश को जाननेवाले सम्यग्ज्ञान को **नयज्ञान** कहते हैं।

---

१. सर्वार्थसिद्धि, पृष्ठ १५

कहा भी है कि **''सकलादेश: प्रमाणाधीनो विकलादेशो नयाधीन:**[१] – सकलादेश प्रमाणज्ञान का विषय है और विकलादेश नयज्ञान का विषय है।

प्रश्न – आचार्य देवसेन तो अपने श्रुतभवनदीपक नयचक्र में व्यवहारनय को पूज्यतर और निश्चयनय को पूज्यतम सिद्ध करते हैं और आप यहाँ प्रमाण को पूज्य बता रहे हैं।

आचार्य देवसेन का उक्त कथन इसप्रकार है –

''तर्ह्येवं द्वावपि सामान्येन पूज्यतां गतौ। न ह्येवं, व्यवहारस्य पूज्यतरत्वान्निश्चयस्य तु पूज्यतमत्वात्।

ननु प्रमाणलक्षणो योऽसौ व्यवहार: स व्यवहारनिश्चयमुभयं च गृह्णन्नप्यधिकविषयत्वात्कथं न पूज्यतमो ?

नैवं नयपक्षातीतमात्मानं कर्तुमशक्यत्वात्। तद्यथा। निश्चयं गृह्णन्नपि अन्ययोगव्यवच्छेदं न करोतीत्यन्ययोगव्यवच्छेदाभावे व्यवहारलक्षणभावक्रियां निरोद्धुमशक्त: अत एव ज्ञानचैतन्ये स्थापयितुमशक्य एवासावात्मानमिति।

तथा प्रोच्यते। निश्चयनयस्त्वेकत्वे समुपनीय ज्ञानचैतन्ये संस्थाप्य परमानंदं समुत्पाद्य वीतरागं कृत्वा स्वयं निवर्तमानो नयपक्षातिक्रांतं करोति तमिति पूज्यतम:।[२]

शंका – यदि ऐसा है तो दोनों ही नय सामान्यरूप से ही पूज्यत्व को प्राप्त होंगे।

समाधान – नहीं, ऐसा नहीं है; क्योंकि व्यवहारनय तो पूज्यतर है और निश्चयनय पूज्यतम है।

शंका – प्रमाणलक्षणवाला व्यवहारनय व्यवहार, निश्चय और उभय – सभी को ग्रहण करनेवाला होने पर भी, अधिक विषयवाला होने पर भी पूज्यतम क्यों नहीं है?

समाधान – नहीं है, वह पूज्यतम नहीं है; क्योंकि प्रमाणलक्षणवाला **व्यवहारनय भी आत्मा को नयपक्षातीत नहीं कर सकता।**

वह इसप्रकार है – निश्चय का अन्तर्भाव होने पर भी वह अन्ययोग का व्यवच्छेद नहीं करता तथा अन्ययोगव्यवच्छेद के अभाव में व्यवहारलक्षणवाली भाव क्रिया (विकल्पजाल) का निरोध अशक्य है। अत: वह आत्मा को ज्ञानचैतन्य में स्थापित करने में अशक्य ही है। **(क्रमश:)**

१. सर्वार्थसिद्धि, पृष्ठ १५
२. देवसेनकृत श्रुतभवनदीपक, पृष्ठ २४-२५

छहढाला प्रवचन

सम्यक्त्व धारक जीव की अंतरंग दशा, उसकी महिमा एवं दुर्गतिगमन का अभाव

दोषरहित गुणसहित सुधी जे, सम्यग्दरश सजै हैं।
चरितमोहवश लेश न संजम पै सुरनाथ जजै हैं।।
गेही, पै गृह में न रचैं ज्यों, जलतैं भिन्न कमल है।
नगरनारि को प्यार यथा, कादे में हेम अमल है।।१५।।
प्रथम नरक बिन षट् भू ज्योतिष वान भवन षंड नारी;
थावर विकलत्रय पशु में नहिं, उपजत सम्यक् धारी।
तीनलोक तिहुँकाल माहिं नहिं, दर्शन सो सुखकारी;
सकल धर्म को मूल यही, इस बिन करनी दुखकारी।।१६।।

(सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक विद्वान पण्डित दौलतरामजीकृत छहढाला पर गुरुदेवश्री के प्रवचन पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।)

(गतांक से आगे....)

महावीर भगवान के समय में राजगृही के महाराजा श्रेणिक को पहले अज्ञानदशा में जैन मुनि के ऊपर उपसर्ग करने से सातवीं नरक की आयु बँध गई; परन्तु बाद में उन्हीं मुनिराज के समीप में जैनधर्म पाकर, महावीर प्रभु के पादमूल में क्षायिक सम्यक्त्व प्रगट किया एवं तीर्थंकर प्रकृति भी बाँधी, तब उनकी नरक की स्थिति घटकर असंख्य वर्ष में से ८४००० वर्ष की ही रह गई और सातवीं के बदले प्रथम नरक (क्षायिक सम्यक्त्व को साथ लेकर) गये। जिस गति की आयु बँध गयी, वह गति नहीं बदलती। ८४००० वर्ष पूर्ण होने पर वहाँ से निकल कर वे तीन लोक के नाथ तीर्थंकर परमात्मा होंगे – यह सम्यक्त्व का प्रताप है। योगसार में कहा है कि –

जो जीव सम्यग्दृष्टि दुर्गति गमन ना कबहूँ करें।
यदि करें भी ना दोष पूरब करम को ही क्षय करें।।

सम्यग्दर्शन होने के बाद जीव को दुर्गति गमन नहीं होता; किन्तु यदि पूर्वबद्ध आयु के कारण से नरक में जाय तो भी इसमें सम्यग्दर्शन का कोई दोष नहीं है; यह तो

पूर्व की मिथ्यात्व दशा में बँधे हुए कर्मों का फल है और उस कर्म की भी उसे निर्जरा हो जाती है।

देखो, इसमें कितनी बात आ गई ! प्रथम तो संसार में चार गतियाँ होती हैं। आत्मज्ञान होने पर तत्क्षण ही जीव की मुक्ति हो जाये और वह संसार में रहे ही नहीं - ऐसा नहीं है। सम्यग्दर्शन के बाद भी किसी को कुछ भव होते हैं। उस सम्यग्दृष्टि को असंयम एवं कुछ अशुभभाव होते हुए भी सम्यग्दर्शन के प्रभाव से उसके परिणाम इतने उज्ज्वल रहते हैं कि उत्तम देव या मनुष्य में ही उसका जन्म होता है; वह नीची जाति के देवों में नहीं जाता, देवी भी नहीं होता। सम्यग्दृष्टि जीव मरकर इन्द्राणी नहीं होता, स्त्रीपर्याय में तो मिथ्यादृष्टि जीव ही उत्पन्न होता है। उत्पन्न होने के बाद वह सम्यग्दर्शन प्रगट कर सकता है। नीची जाति के देव, देवियाँ, छहों नरक के नारकी, नपुंसक - इन सबमें उत्पन्न होने वाले जीव सम्यग्दर्शन पा सकते हैं; परन्तु वहाँ उत्पन्न होने के समय तो वे मिथ्यादृष्टि ही होते हैं। मल्लि तीर्थंकर को जो लोग स्त्रीपर्याय मानते हैं, उन्हें जैनसिद्धान्त की या सम्यक्त्व के महिमा की जानकारी नहीं है। सभी तीर्थंकरों का आत्मा तो पूर्व भव से ही सम्यग्दर्शन तथा अवधिज्ञान साथ में लेकर आता है, तब वह स्त्री-पर्याय कैसे धारण करे ? स्त्रीपर्याय में तो मिथ्यादृष्टि जीव ही उत्पन्न होता है, सम्यग्दृष्टि कभी नहीं।

देवलोक से मरकर सम्यग्दृष्टि जीव कर्मभूमि का मनुष्य होता है; परन्तु मनुष्य में से मरकर कोई सम्यग्दृष्टि जीव कर्मभूमि का मनुष्य नहीं होता; यदि पहले मनुष्य की आयु बँध गई हो और मनुष्य हो तो भी भोगभूमि का ही मनुष्य होगा, कर्मभूमि का (विदेहक्षेत्रादि का) नहीं होगा। कोई लोग बिना समझे ऐसा कहते हैं कि कोई धर्मात्मा यहाँ से मरकर सीधा विदेहक्षेत्र में जन्मा; परन्तु यह भूल है। जो मनुष्य मरकर विदेह में उत्पन्न हो, वह नियम से मिथ्यादृष्टि होगा। कुन्दकुन्दाचार्यदेव वगैरह यहाँ से विदेह में गये थे – यह बात सच है; परन्तु वे तो देहसहित गये थे; समाधिमरण करके तो वे स्वर्ग में गये हैं।

अज्ञानदशा में नरक की आयु बँध गई हो और बाद में जो जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त करे, वह प्रथम नरक में जायेगा; इससे नीचे के छह नरकों में सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न नहीं होते; वहाँ जाने के बाद तो सातों नरक के जीव सम्यग्दर्शन पा सकते हैं। सातों नरक में असंख्यात सम्यग्दृष्टि जीव हैं।

सम्यग्दर्शन के साथ तो नरक या तिर्यंच का आयुष बँधता ही नहीं; चाहे अव्रती

हो तो भी ४१ अशुभ कर्मप्रकृति का बन्धन सम्यग्दृष्टि को कभी नहीं होता। वे इसप्रकार हैं – मिथ्यात्व, हुंडकादि पाँच संस्थान, वज्रवृषभनाराच के अतिरिक्त पाँच संहनन, नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय, स्थावर, आतप, उद्योत, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु, तिर्यंचत्रिक, अनन्तानुबंधी क्रोधादि चार, स्त्यानगृद्धि, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला – ये तीन दर्शनावरण, अप्रशस्त विहायोगति, नीच गोत्र, दुर्भग, दुस्वर तथा अनादेय।

ये प्रकृतियाँ मिथ्यात्व अवस्था में बँध गई हों तो भी अनेक तो सम्यक्त्व के प्रभाव से नष्ट हो जाती हैं, पर नरकादि का आयुबंध नहीं छूटता; किन्तु उसके स्थिति-अनुभाग बहुत कम हो जाते हैं, हीन तिर्यंच का या मनुष्य का आयु बँध गया हो तो सम्यक्त्व के प्रभाव से वह उत्तम भोगभूमि का हो जाता है। व्यंतरादि नीची जाति के देव का आयु बँध गया हो तो सम्यक्त्व के प्रभाव से वह बदल कर कल्पवासी-वैमानिक देव का हो जाता है।

सम्यग्दृष्टि जीव नीचकुल में या दरिद्रता में उत्पन्न नहीं होते, वह अत्यंत अल्प आयु वाला नहीं होता, विकृत अंगवाला या लूला, गूँगा, बहरा, अंधा भी उत्पन्न नहीं होता। यह सब आत्मा का बाह्य पुण्यफल है। सम्यग्दर्शन की अनुभूति तो इन सबसे अत्यंत अलग ही है। देवादि के उत्तम शरीर से भी सम्यग्दृष्टि अपने को सर्वथा भिन्न ही अनुभव करता है; किन्तु सम्यक्त्व के साथ में ऐसे पुण्य का संबंध रहता है – यहाँ यह दिखाना है। सम्यग्दृष्टि तो अपने को राग से भी भिन्न अनुभवता है, तब फिर पुण्यकर्म की या संयोग की तो बात ही कैसी ?

देवों में नपुंसक नहीं होते; मनुष्य तथा तिर्यंच में नपुंसक होते हैं; परन्तु सम्यग्दृष्टि उसमें उत्पन्न नहीं होते; यह अलग बात है कि नरक में उत्पन्न होने वाले सम्यग्दृष्टि नपुंसक होते हैं; क्योंकि नरक में तो सभी को एक ही नपुंसकवेद होता है, वहाँ अन्य कोई वेद होते ही नहीं। कौन जीव कहाँ उत्पन्न हो सकता है और कहाँ नहीं, उसका विस्तृत कथन श्री षट्खंडागम आदि सिद्धान्त सूत्रों में है। **(क्रमशः)**

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के समस्त ऑडियो - वीडियो प्रवचन साहित्य एवं अन्य अनेक जानकारियों के लिये अवश्य देखें -
वेबसाईट - www.vitragvani.com
संपर्क सूत्र-श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई
Ph.: 022-26130820, 26104912, E-Mail- info@vitragvani.com

नियमसार प्रवचन –

परद्रव्य हेय एवं स्वद्रव्य उपादेय

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार के शुद्धभावाधिकार की 50वीं गाथा के उपरान्त उद्धृत कलश पर हुये आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरस गर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

कलश मूलत: इसप्रकार है –

(शार्दूलविक्रीडित)

सिद्धान्तोऽमुदात्तचित्तचरितैर्मोक्षार्थिभि: सेव्यतां
शुद्धं चिन्मयमेकमेव परमं ज्योति: सदैवास्म्यहम्।
एते ये तु समुल्लसंति विविधा भावा: पृथग्लक्षणा-
स्तेऽहं नास्मि यतोऽत्र ते मम परद्रव्यं समग्रा अपि ।।२४।।

(हरिगीत)

मैं तो सदा ही शुद्ध परमानन्द चिन्मयज्योति हूँ।
सेवन करें सिद्धान्त यह सब ही मुमुक्षु बन्धुजन।।
जो विविध परभाव मुझमें दिखें वे मुझ से पृथक्।
वे मैं नहीं हूँ क्योंकि वे मेरे लिए परद्रव्य हैं।। २४।।

(गतांक से आगे ...)

इसीप्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद्अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में १८५वें श्लोक द्वारा) कहा है कि –

''जिनके चित्त का चरित्र उदात्त (उदार, उच्च, उज्ज्वल) है – ऐसे मोक्षार्थी इस सिद्धान्त का सेवन करो कि मैं तो शुद्ध चैतन्यमय एक परम ज्योति ही सदैव हूँ और यह जो भिन्न लक्षणवाले विविध प्रकार के भाव प्रगट होते हैं वह मैं नहीं हूँ; क्योंकि वे सब परद्रव्य हैं।''

मोक्षार्थी जीवों को एकरूप शुद्धस्वभाव का सदा सेवन करना चाहिए।

जिन जीवों के ज्ञान का अभिप्राय उज्ज्वल है, उदार है, उन जीवों को क्या करना चाहिये ? ऐसे जीवों को यह सिद्धान्त सेवन करना चाहिए कि मैं तो शुद्ध ज्ञानमय हूँ और ऐसा मानने वाला उदार है। जो जीव निमित्त से, व्यवहार से, पुण्य से, धर्म

मानते हैं, उनका अभिप्राय उदार नहीं है; अतः व्यवहार से धर्म मत मानो। किन्तु मैं त्रिकाल एकरूप शुद्ध आत्मा हूँ, कारणपरमात्मा हूँ, मेरे आधार से ही धर्मदशा प्रकट होकर मोक्ष होगा, यह एक ही सिद्धान्त अंगीकार करने जैसा है।

जिसप्रकार अग्नि ईंधन को जला देती है; उसीप्रकार परमज्योतिरूप ज्ञानाग्नि हीन अवस्था को तथा विकार को जला देने में समर्थ है। संसारी और सिद्ध के भेद व्यवहारनय के विषय में जाते हैं, शुद्धनिश्चयनय से मुझमें और सिद्ध में कोई भेद नहीं है। मैं तो ज्ञायकस्वभावी हूँ – ऐसी वाणी ज्ञानी के मुख से निकले, वह वाणी सम्यग्दर्शन में निमित्त होती है। तथा जो अपने में सम्यग्दर्शन प्रकट करे उसको ज्ञानी और वाणी निमित्त कहे जाते हैं।

पर्याय में होनेवाले शुद्ध-अशुद्धभाव अनेकता उत्पन्न करते हैं, इसलिए वे परद्रव्य हैं। उनका लक्ष्य छोड़ने योग्य है।

भिन्न-भिन्न लक्षणवाले दया-दान-हिंसा-झूँठ-चोरी आदि के भाव मैं नहीं हूँ तथा जो नई-नई निर्मल पर्यायें उत्पन्न होती हैं – वे भी मैं नहीं हूँ; क्योंकि वे सब परद्रव्य हैं। निर्मलतारूपी कार्य पर्याय में होता है; किन्तु पर्याय से पर्याय प्रकट नहीं होती, अतः पर्याय को परद्रव्य कहा है। जब पर्याय स्वद्रव्य की तरफ ढलती है तब धर्मदशा प्रकट होती है, इसलिए त्रिकालीस्वभाव को स्वद्रव्य कहा है।

यहाँ यह बताया है कि जिसको दानी बनना हो अर्थात् अपनी निर्मल पर्याय का दान अपने को देना हो वह इस अभिप्राय का सेवन करे कि एक समय की पर्याय जानने योग्य तो है; किन्तु आदर करने योग्य नहीं है। व्यवहाररत्नत्रय का पुण्य-परिणाम भी उदार नहीं है और एक समय की पर्याय भी उदार नहीं है, त्रिकालीस्वभाव एक ही उदार और आदर करने योग्य है। पर्याय तो एक के बाद एक होती है, उसके लक्ष्य से अनेकता होती है, अतः सभी पर्यायें परद्रव्य हैं। इसलिए अनेक का लक्ष्य छोड़कर एकरूप द्रव्य की श्रद्धा-ज्ञान करो – यही धर्म का कारण है।

इस ५०वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं –

(शालिनी)

न ह्यस्माकं शुद्धजीवास्तिकाया-दन्ये सर्वे पुद्गलद्रव्यभावा:।
इत्थं व्यक्तं वक्ति यस्तत्त्ववेदी सिद्धिं सोऽयं याति तामत्यपूर्वाम् ।।७४।।

(सोरठा)

वे न हमारे भाव, शुद्धातम से अन्य जो।
ऐसे जिनके भाव, सिद्धि अपूरव वे लहें ॥७४॥

''शुद्ध जीवास्तिकाय से अन्य ऐसे जो सब पुद्गलद्रव्य के भाव हैं, वे वास्तव में हमारे नहीं हैं'' – ऐसा जो तत्त्ववेदी स्पष्टरूप से कहते हैं, वे अति अपूर्व सिद्धि को प्राप्त होते हैं।

जो तत्त्ववेदी शुद्धजीव को अपना माने तथा शेष भावों को पर माने वह मोक्षदशा को पाता है।

यहाँ शुद्धजीवास्तिकाय शब्द प्रयोग किया है, उसका अभिप्राय ऐसा है कि प्रत्येक जीव शुद्ध और असंख्यप्रदेशी है। शुद्धजीवास्तिकाय कहो, कारणसमयसार कहो, त्रिकालध्रुवस्वभाव कहो, नित्य कहो, त्रिकालकारणशुद्धजीव कहो, सभी एकार्थवाचक हैं। शुद्धजीव के अतिरिक्त पर्याय में होनेवाले दया-दानादि के भाव वास्तव में हमारे नहीं हैं, विकार तथा ज्ञान का हीनपना भी हमारा स्वरूप नहीं है; यह सब पुद्गल के लक्ष्य से होनेवाले भाव हैं, अतः पुद्गलद्रव्य के ही भाव हैं, शुद्धजीव के भाव नहीं हैं – ऐसा तत्त्व के ज्ञायक स्पष्टतया कहते हैं अर्थात् मानते हैं और वे ही पूर्व में कभी नहीं प्रकट हुई ऐसी मुक्तिदशा को पाते हैं।

यहाँ 'कहते हैं' शब्द में वाणी पर जोर नहीं देना है; किन्तु वाणी के पीछे वाच्य का जोर बताना है। स्वयं शुद्धचैतन्यस्वभाव को ही आदरणीय मानते हैं – ऐसे तत्त्ववेदी सच्ची बात जगत से कहते हैं कि तुझे अपने जीव के आश्रय के अतिरिक्त अन्यत्र तीनकाल में भी मुक्ति नहीं। इसके फल में साधारण सिद्धि अर्थात् मात्र सम्यग्दर्शन की बात नहीं; किन्तु पूर्ण परम मोक्षदशा की बात है। ●

द्रोणगिरि संगोष्ठी में पधारें

सानिध्य – ब्र. रवीन्द्रकुमारजी 'आत्मन्', अमायन, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री, देवलाली एवं अन्य अनेक। **दिनांक –** 27 अप्रैल से 1 मई 2014; **संपर्क सूत्र –** विनोद देवडिया (अध्यक्ष-9425614226), डॉ. गुलाबचंद जैन (मंत्री, 9424760859), पंकज जैन (मैनेजर सिद्धायतन-9753456868); **आयोजक –** श्री गुरुदत्त कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट। **कृपया अपने आगमन की पूर्व सूचना अवश्य दें। सभी को हार्दिक आमंत्रण है।**

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : क्या सम्यग्दृष्टि जीव स्त्री और माता को समान मानता है ?

उत्तर : स्वभावदृष्टि से देखने पर सभी जीव समान हैं। स्त्री का जीव मात्र स्त्रीपर्याय जितना ही नहीं है; किन्तु पूर्ण चैतन्य भगवान है और माता का जीव भी उसीप्रकार परिपूर्ण है। एकरूप स्वभावदृष्टि में कोई माता या स्त्री है ही नहीं। सिद्ध या निगोद, एकावतारी या अनन्तसंसारी, स्त्री या माता – सभी जीव परिपूर्ण चैतन्यस्वरूप एक समान हैं- ऐसी स्वभावदृष्टि में अनन्त वीतरागभाव आ जाता है।

प्रश्न : सम्यग्दृष्टि जीव जब स्त्री को भी चैतन्यपरमेश्वर मानता है, तो राग छोड़कर क्यों नहीं बैठ जाता ?

उत्तर : स्वभावदृष्टि से तो सम्यग्दृष्टि एकतरफ ही बैठा है। एकतरफ बैठने की व्याख्या क्या? परद्रव्य में तो कोई आत्मा बैठता नहीं, अज्ञानी जीव विकार में ही अपनापन मानकर स्थित हुआ है; जबकि ज्ञानी जीव संयोग और विकार से अपने स्वभाव को भिन्न जानकर स्वभाव की एकता में स्थित है। ज्ञानी की जो स्त्री आदि सम्बन्धी राग होता है, उस राग से भिन्न अपने स्वरूप का अनुभव करता है और राग का आदर नहीं करता; इसलिये ज्ञानी जीव वास्तव में अपने स्वभाव में ही बैठा है।

प्रश्न : सम्यग्दृष्टि के श्रद्धान में शुभाशुभ दोनों भाव हेय हैं, तो क्या उसे अशुभ को छोड़कर शुभ करने का विकल्प नहीं आता?

उत्तर : सम्यग्दृष्टि ऐसा जानता है कि शुद्धनिश्चय नय से मैं मोह-राग-द्वेष रहित शुद्ध हूँ। उसे ऐसा विकल्प कभी नहीं आता कि जब शास्त्र में शुभ और अशुभ दोनों को एक समान कहा है तो भले ही अशुभ आ जावे- क्या हानि है? सम्यग्दृष्टि अशुभ से बचने के लिए वाँचन, श्रवण, मनन, भक्ति आदि बराबर करता है। शुभ और अशुभ परमार्थ से समान ही है; तथापि अपनी भूमिका प्रमाण अशुभ की अपेक्षा शुभ में रहने का विवेक होता है और उसप्रकार का विकल्प भी आता है। अरे भाई ! सम्यग्दृष्टि को पापभाव में स्वच्छन्दता नहीं होती।

समाचार दर्शन -

श्री टोडरमल स्मारक भवन, जयपुर में –

ताजा हुई पंचकल्याणक की मधुर स्मृतियाँ

द्वितीय वार्षिकोत्सव उल्लास के साथ सम्पन्न

जयपुर (राज.) : 2 वर्ष पूर्व दिनांक 21 फरवरी से 27 फरवरी 2012 तक श्री टोडरमल स्मारक भवन, जयपुर में संपन्न ऐतिहासिक पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव की स्मृति में आयोजित 3 दिवसीय द्वितीय वार्षिकोत्सव दिनांक 28 फरवरी से 2 मार्च तक ऐसी अनुभूतियों के साथ संपन्न हुआ मानो साक्षात् पंचकल्याणक ही सम्पन्न हो रहा हो।

समारोह की मुख्य बातें -

● शिलान्यास सम्पन्न ● सी.डी. के माध्यम से पू. गुरुदेवश्री के प्रवचन ● समयसार परिशिष्ट पर डॉ. भारिल्ल के लाइव प्रवचन ● जी जागरण टी.वी. पर – डॉ. भारिल्ल के प्रवचन ● पू. गुरुदेवश्री के व्यक्तित्व कर्तृत्व पर विद्वत्गोष्ठियाँ ● पण्डित शांतिकुमारजी पाटील, डॉ.संजीवकुमारजी गोधा, पण्डित संजयजी शास्त्री मंगलायतन आदि समागत विद्वानों के प्रवचन ● जन्मकल्याणक राजसभा का आयोजन ● स्नातक ज्ञानगोष्ठी सम्पन्न ● रत्नत्रय विधान का आयोजन ● रथयात्रा ● महामस्तकाभिषेक

पंचतीर्थ जिनालय के सामने स्थित हॉल का नवीनीकरण प्रस्तावित –

शिलान्यास सम्पन्न -

1 मार्च 2014 – ज्ञानतीर्थ टोडरमल स्मारक भवन में स्थित श्री पंचतीर्थ जिनालय के सामने स्थित हॉल के नवीनीकरण कार्य का शिलान्यास **श्री मनोजजी प्रधान (शीतल ग्रुप) भोपाल** के करकमलों द्वारा सम्पूर्ण विधिविधान के साथ समारोह पूर्वक सम्पन्न हुआ।

शिलान्यास की सम्पूर्ण विधि प्रतिष्ठाचार्य ब्र.अभिनन्दनकुमारजी के निर्देशन में सम्पन्न हुई।

अपने शिलान्यास भाषण में श्री मनोजजी प्रधान ने टोडरमल स्मारक द्वारा किये जा रहे तत्त्वप्रचार की बहुत सराहना की।

उल्लेखनीय है कि उक्त नवीनीकरण के कार्य में श्री मनोजजी प्रधान, उनके परिवार एवं शीतल समूह द्वारा उल्लेखनीय आर्थिक सहयोग प्रदान किया गया है। इस अवसर पर सर्वश्री नरेन्द्रजी बड़जात्या जयपुर, श्री शांतिलालजी आशीषजी जैन जयपुर, श्रीमती कुसुम-प्रदीपजी चौधरी किशनगढ, श्री प्रमोदजी जैन डी.डी.ग्रुप फिरोजाबाद, नमिता छाबड़ा मोतीसंस जयपुर, उषा छाबड़ा मोतीसंस, महेन्द्रजी गाला भोपाल, श्री प्रेमचंदजी बजाज कोटा आदि महानुभावों

ने भी शिलान्यास स्थल पर ही ईंटे रखी व निर्माणकार्य के लिये अपना महत्वपूर्ण योगदान भी घोषित किया।

गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के व्यक्तित्व कर्तृत्व विषय पर विद्वत्गोष्ठी –

पंचकल्याणक की स्मृति-स्वरूप आयोजित द्वितीय वार्षिकोत्सव के अन्तर्गत समयसार के मर्मज्ञ श्रीकानजीस्वामी एवं बीसवीं सदी की आध्यात्मिक क्रान्ति के सूत्रधार-आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी विषयों पर गोष्ठियों का आयोजन किया गया।

(1) दिनांक 28 फरवरी को दोपहर में श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के वर्तमान विद्यार्थियों द्वारा **'समयसार के मर्मज्ञ श्रीकानजीस्वामी'** विषय पर एक गोष्ठी का आयोजन किया गया।

गोष्ठी के अध्यक्ष श्री प्रकाशकरणजी सेठिया सरदार शहर, मुख्य अतिथि श्री शान्तिलालजी चौधरी भीलवाड़ा एवं विशिष्ट अतिथि पण्डित शिखरचंदजी विदिशा एवं पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल (प्राचार्य-टोडरमल महाविद्यालय) मंचासीन थे।

गोष्ठी का मंगलाचरण पंकजजी शास्त्री, बमनी (शास्त्री तृतीय वर्ष) ने एवं संचालन सचिनजी शास्त्री सागर व सुमतिनाथजी अम्बेकर (शास्त्री तृतीय वर्ष) ने किया।

(2) द्वितीय गोष्ठी दिनांक 1 मार्च को दोपहर में श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के स्नातक विद्वानों द्वारा **'बीसवीं सदी की आध्यात्मिक क्रान्ति के सूत्रधार – आध्यात्मिक सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी'** विषय पर आयोजित की गई। **गोष्ठी के अध्यक्ष डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल थे।**

इस गोष्ठी में डॉ. सुमतजी शास्त्री बरां द्वारा **जिन अध्यात्म का स्वरूप एवं संक्षिप्त इतिहास,** डॉ. संजयजी शास्त्री दौसा द्वारा **श्री कानजीस्वामी से पूर्ववर्ती सामाजिक स्थिति,** कुमारी परिणति पाटील जयपुर द्वारा **आध्यात्मिक क्रांति में श्रीकानजीस्वामी का योगदान,** डॉ. दीपकजी जैन 'वैद्यरत्न' जयपुर द्वारा **जिन अध्यात्म को श्री कानजीस्वामी की देन-निश्चय-व्यवहार का सुमेल,** पण्डित अनेकान्तजी भारिल्ल मुम्बई द्वारा **श्री कानजीस्वामी आध्यात्मिक चिन्तन का सार-दृष्टि का विषय,** पण्डित पीयूषजी शास्त्री जयपुर द्वारा **वस्तुस्वातंत्र्य के उद्घोषक श्री कानजीस्वामी-(क्रमबद्धपर्याय के संदर्भ में),** डॉ. श्रीयांसजी सिंघई जयपुर द्वारा **श्री कानजीस्वामी की दृष्टि में कर्तृकर्म मीमांसा (निमित्तोपादान के संदर्भ में),** डॉ. नीतेशजी शास्त्री डडूका द्वारा **श्री कानजीस्वामी की आध्यात्मिक क्रांति में हमारी भूमिका** विषय पर अपने वक्तव्य प्रस्तुत किये।

गोष्ठी का मंगलाचरण पण्डित विवेकजी शास्त्री दलपतपुर ने एवं संचालन पण्डित सोनूजी शास्त्री ने किया।

राजसभा का भव्य आयोजन - 1 मार्च 2014 – राजा नाभिराय के दरबार में समागत राजाओं के बीच मुनिराजों के स्वरूप, उनके वैराग्य और रत्नत्रय की आराधना की चर्चा का सुन्दर प्रस्तुतीकरण हुआ। राजसभा का उद्घाटन श्रीमती उषा सोगानी एवं श्री राजीवजी सोगानी के करकमलों द्वारा सम्पन्न हुआ व मंगलाचरण कुमारी परिणति पाटील जयपुर ने किया।

सभा का संचालन पण्डित संजयजी शास्त्री मंगलायतन के निर्देशन में पण्डित विवेकजी शास्त्री दलपतपुर, पण्डित अकलंकजी जैन व टोडरमल महाविद्यालय के विद्यार्थियों ने किया।

विशाल शोभायात्रा - कार्यक्रम के अंतिम दिन दिनांक 2 मार्च को जिनेन्द्र भगवान की विशाल शोभायात्रा का भव्य आयोजन किया गया।

टोडरमल स्मारक भवन से प्रारंभ हुई इस विशाल शोभायात्रा में जिनेन्द्र भगवान को रथ में बैठाकर चलने का सौभाग्य श्री प्रेमचंदजी बजाज, कोटा ने प्राप्त किया। साथ ही श्री अजितजी तोतुका, वैभव तोतुका ने चंवर को धारण किया।

यह शोभायात्रा श्री टोडरमल स्मारक भवन से राजेन्द्र मार्ग, सावित्री पथ, पार्श्वनाथ चैत्यालय होती हुई लगभग 2.5 कि.मी. का मार्ग तय कर श्री टोडरमल स्मारक भवन पहुँची। शोभायात्रा में श्री सुरेशचंदजी शिवपुरी धर्मध्वजा लेकर सबसे आगे चल रहे थे।

महामस्तकाभिषेक – दिनांक 2 मार्च को शोभायात्रा के उपरांत श्री पंचतीर्थ जिनालय एवं श्री सीमंधर जिनालय में विराजमान समस्त जिनबिम्बों का महा-मस्तकाभिषेक सम्पन्न हुआ।

डॉ. भारिल्ल के विशेष प्रवचन - एक लम्बी व गम्भीर अस्वस्थता के बाद इस वार्षिकोत्सव में डॉ. भारिल्ल के समयसार के परिशिष्ट पर प्रवचन आकर्षण के विशिष्ट केन्द्र रहे। दिनांक 2 मार्च को श्रोताजनों के विशिष्ट आग्रह पर 'करोड़पति रिक्शावाला' वाले प्रवचन ने श्रोता समूह को मन्त्रमुग्ध कर दिया।

डॉ. भारिल्ल ने वार्षिकोत्सव के बाद भी समयसार परिशिष्ट पर अपने प्रवचन जारी रखने का संकल्प व्यक्त किया।

स्नातक ज्ञानगोष्ठी में बही तत्त्वज्ञान की गंगा-

दिनांक 28 फरवरी की रात्रि में टोडरमल महाविद्यालय के विद्यार्थियों द्वारा स्नातक ज्ञानगोष्ठी का आयोजन किया गया। मंगलाचरण श्री अकलंकजी जैन फिरोजाबाद ने एवं मंच उद्घाटन श्री महेन्द्रजी गाला भोपाल ने किया।

रात्रि में सांस्कृतिक कार्यक्रम के अन्तर्गत **'वर्तमान समय में जैनधर्म पढने की आवश्यकता'** विषय पर ज्ञानगोष्ठी का आयोजन किया गया। गोष्ठी में महाविद्यालय में अध्ययनरत विद्यार्थियों ने अपना संवाद प्रस्तुत किया।

कार्यक्रम का संचालन पण्डित संजयजी शास्त्री मंगलायतन व अकलंक जैन फिरोजाबाद ने किया। सभा का उद्घाटन श्री महेन्द्रजी गाला ने किया।

गरिमामय सानिध्य -

– शिलान्यासकर्त्ता – श्री मनोजजी प्रधान (शीतल ग्रुप), भोपाल

– महोत्सव के आमंत्रणकर्त्ता – श्री प्रमोदकुमार प्रशांतकुमार जैन परिवार (जलेसर वाले), डी.डी. ग्रुप, दिल्ली

– ध्वजारोहणकर्त्ता – श्री निहालचंदजी घेवरचंदजी परिवार, जयपुर

– सभागृह का उद्घाटन – श्री जिनेन्द्रजी जैन (खतौली वाले) दिल्ली

– कार्यक्रम का उद्घाटन – श्री दिलीपभाई शाह, मुम्बई

– कार्यक्रम के अध्यक्ष – श्री सुशीलकुमारजी गोदीका (अध्यक्ष-पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट)

– मंचासीन विद्वत्वर्ग – डॉ0 हुकमचंदजी भारिल्ल, पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल, ब्र. यशपालजी जैन, ब्र. अभिनन्दनकुमारजी शास्त्री, पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील, डॉ0 संजीवकुमारजी गोधा, पण्डित संजयजी शास्त्री मंगलायतन

– विशिष्ट अतिथिगण – श्री अभयकरणजी सेठिया सरदारशहर, श्री दिलीपभाई शाह मुम्बई, श्री महेन्द्रकुमारजी पाटनी जयपुर, श्री शान्तिलालजी जैन अलवर, श्री जिनेन्द्रजी जैन दिल्ली, श्री सनतकुमारजी जैन फिरोजाबाद, श्री आशीषजी जैन मुम्बई, श्रीमती स्वानुभूति जैन मुम्बई

– विधानआमंत्रणकर्त्ता – श्री शान्तिलालजी जैन आशीष जैन जयपुर, श्रीमती ज्योत्सना मणिकान्त भाई शाह मुम्बई, कु. नेहा जैन पुत्री श्री सनतकुमार जैन फिरोजाबाद

– विधि-विधान – ब्र. अभिनन्दनजी शास्त्री खनियांधाना, पण्डित संजयजी शास्त्री मंगलायतन, पण्डित सोनूजी शास्त्री जयपुर

– संयोजक – श्री महेन्द्रकुमारजी पाटनी

– निर्देशन एवं संचालन – श्री परमात्मप्रकाशजी भारिल्ल (कार्यकारी महामंत्री-पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट); **– विशिष्ट सहयोग –** पण्डित शुद्धात्मप्रकाशजी भारिल्ल

– क्रियान्वयन – पण्डित पीयूषजी शास्त्री

वैराग्य समाचार

उज्जैन (म.प्र.) निवासी श्री रतनलालजी कासलीवाल का दिनांक 18 फरवरी को शांतपरिणामोंपूर्वक देहावसान हो गया। ज्ञातव्य है कि आप स्व. पण्डित पूनमचंदजी छाबड़ा के समधी थे। आपकी स्मृति में आपकी धर्मपत्नी श्रीमती माणकबाई द्वारा जैनपथप्रदर्शक एवं वीतराग-विज्ञान हेतु 500-500/- रुपये प्राप्त हुये।

दिवंगत आत्मा शीघ्र ही अनंत अतीन्द्रिय आनंद को प्राप्त हो - यही मंगल भावना है।

अष्टाह्निका महापर्व सानन्द संपन्न

(1) अलवर (राज.) : यहाँ रत्नत्रय दि. जैन मंदिर चेतन एन्क्लेव में कुन्दकुन्द स्मृति ट्रस्ट, मुमुक्षु मण्डल एवं अ.भा.जैन युवा फैडरेशन अलवर के तत्त्वावधान में अष्टाह्निका महापर्व के अवसर पर रत्नत्रय विधान एवं आध्यात्मिक शिक्षण शिविर संपन्न हुआ।

इस अवसर पर गुरुदेवश्री के छहढाला व समयसार 17-18 पर सी.डी. प्रवचनों के अतिरिक्त पण्डित राकेशजी शास्त्री दिल्ली, डॉ. दीपकजी जैन 'वैद्यरत्न', पण्डित दिनेशजी कासलीवाल इन्दौर, पण्डित नितुलजी इन्दौर, पण्डित राजीवजी शास्त्री थानागाजी आदि विद्वानों द्वारा समयसार एवं नाटक समयसार पर प्रवचनों का लाभ मिला।

संपूर्ण कार्यक्रम का संचालन पण्डित अजितजी शास्त्री अलवर ने किया।

(2) दिल्ली (विश्वास नगर) : यहाँ महापर्व के अवसर पर पण्डित मनोजजी करेली द्वारा प्रात: समयसार पर एवं रात्रि में वैराग्य संग्रह पर प्रवचनों का लाभ मिला।

इस अवसर पर प्रवचनसार विधान का भी आयोजन किया गया।

विधि-विधान के कार्य पण्डित विवेकजी शास्त्री सागर एवं पण्डित संजयजी शास्त्री बांसवाड़ा द्वारा संपन्न हुये।

(3) दिल्ली (भोगल) : यहाँ महापर्व के अवसर पर सिद्धचक्रमण्डल विधान का आयोजन किया गया। इस अवसर पर प्रारंभिक दो दिन डॉ. संजीवकुमारजी गोधा जयपुर के प्रवचनों का लाभ मिला। विधि-विधान के कार्य ब्र. अभिनन्दनजी शास्त्री खनियांधाना व पण्डित मयंकजी शास्त्री दिल्ली द्वारा संपन्न हुये। विधान के आयोजनकर्त्ता श्री.पी.सी. जैन परिवार भोगल थे।

द्वितीय दीक्षान्त समारोह संपन्न

कोटा (राज.) : यहाँ मुमुक्षु आश्रम में दिनांक 15 से 17 मार्च तक आचार्य धरसेन महाविद्यालय का द्वितीय दीक्षान्त समारोह व पंचमेरु विधान संपन्न हुआ।

इस अवसर पर पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील जयपुर, डॉ. संजीवकुमारजी गोधा जयपुर, ब्र. चन्द्रसेनजी भोपाल आदि विद्वानों के व्याख्यानों का लाभ मिला।

शास्त्री अंतिम वर्ष के सभी छात्रों ने अपने उद्बोधन में शास्त्री की पढाई को अपने जीवन की सर्वोत्तम उपलब्धि बताया। इस अवसर पर पण्डित राजकुमारजी बांसवाड़ा, डॉ. संजीवकुमारजी गोधा, श्री ज्ञानचंदजी जैन एवं श्री प्रेमचंदजी बजाज के विशिष्ट उद्बोधन के उपरान्त पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील के दीक्षान्त भाषण का लाभ प्राप्त हुआ एवं उन्हीं के करकमलों से शास्त्री उत्तीण कर रहे छात्रों को 'आगम शास्त्री' की उपाधि से विभूषित किया गया।

विधि-विधान के कार्य पण्डित धर्मेन्द्रजी शास्त्री के निर्देशन में पण्डित अंकितजी लूणदा ने संपन्न कराये।

समस्त कार्यक्रम श्री रतनचंदजी चौधरी कोटा के निर्देशन में संपन्न हुये।

दशाब्दि समारोह संपन्न

सिद्धायतन-द्रोणगिरि (म.प्र.) : यहाँ संचालित आचार्य समन्तभद्र शिक्षण संस्थान के 10 वर्ष पूर्ण होने पर दिनांक 21 से 23 फरवरी तक दशाब्दि समारोह एवं पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव की षष्ठम् वर्षगांठ हर्षोल्लासपूर्वक संपन्न हुई।

इस अवसर पर गुरुदेवश्री कानजीस्वामी द्वारा छहढाला पर सी.डी. प्रवचनों के अतिरिक्त ब्र. सुमतप्रकाशजी खनियांधाना, पण्डित राजेन्द्रकुमारजी जबलपुर, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली, पण्डित राजकुमारजी शास्त्री बांसवाड़ा, पण्डित सिद्धार्थजी दोशी रतलाम, पण्डित रूपचन्दजी बण्डा आदि विद्वानों के प्रवचनों का लाभ मिला। इसके अतिरिक्त कार्यक्रम में पण्डित कोमलचंदजी टडा, पण्डित रतनचंदजी शास्त्री कोटा, पण्डित राजेशजी शास्त्री जयपुर, पण्डित पीयूषजी शास्त्री जयपुर, पण्डित शीतलजी शास्त्री नौगांव, पण्डित माधवजी शास्त्री शाहगढ, पण्डित सौरभजी शास्त्री शाहगढ, डॉ. ममताजी जैन उदयपुर आदि विद्वानों का भी समागम प्राप्त हुआ।

समारोह में रत्नत्रय विधान पण्डित अजितजी शास्त्री अलवर द्वारा संपन्न हुआ। कार्यक्रम में उपस्थित 48 स्नातकों द्वारा **'क्रमबद्धपर्याय'** विषय पर गोष्ठी का आयोजन किया गया। वर्तमान छात्रों द्वारा भी **'सम्यग्दर्शन'** विषय पर गोष्ठी का आयोजन किया गया।

दिनांक 23 फरवरी को सिद्धायतन में विराजमान जिनबिम्बों का मस्तकाभिषेक किया गया। संपूर्ण समारोह पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली के निर्देशन में संपन्न हुआ।

वीतराग-विज्ञान के स्वामित्व का विवरण (फार्म 4 नियम नं. 8)

समाचार पत्र का नाम	:	वीतराग-विज्ञान (हिन्दी)
प्रकाशन स्थान	:	श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-4, बापूनगर, जयपुर-15 (राज.)
प्रकाशन अवधि	:	मासिक
प्रकाशक एवं मुद्रक	:	ब्र. यशपाल जैन (भारतीय) द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के लिये जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि., एम.आई.रोड, जयपुर से मुद्रित एवं प्रकाशित।
सम्पादक का नाम	:	डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल (भारतीय) श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-4, बापूनगर, जयपुर -15 (राज.)
स्वामित्व	:	पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-4, बापूनगर, जयपुर -15

मैं ब्र. यशपाल जैन एतद् द्वारा घोषणा करता हूँ कि मेरी अधिकृत जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं। – प्रकाशक : **ब्र. यशपाल जैन**

दिनांक 26-3-2014 ट्रस्टी, पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

डॉ. उत्तमचंदजी भारिल्ल का देहावसान

जयपुर (राज.) : पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल एवं डॉ.हुकमचन्दजी भारिल्ल के छोटे भाई **डॉ. उत्तमचंदजी भारिल्ल** का दिनांक 9 मार्च 2014 को अत्यंत शांतपरिणामों पूर्वक देहावसान हो गया।

डॉ. उत्तमचंदजी भारिल्ल न केवल स्वयं गम्भीर आत्मार्थी थे, वरन् पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा संचालित तत्त्वप्रचार की गतिविधियों में भी प्रारम्भ से ही अत्यंत सहयोगी थे।

अनेक वर्षों तक अ.भा.जैन युवा फैडरेशन के राजस्थान प्रदेशाध्यक्ष के रूप में राजस्थान में फैडरेशन की गतिविधियों के विस्तार और सफल संचालन में उनका उल्लेखनीय योगदान रहा। आप सरकारी सेवा में रहते हुये लौंगिया-अजमेर में राजकीय आयुर्वेद नर्सिंग प्रशिक्षण केन्द्र के प्रिंसिपल रहे एवं लम्बे समय तक अजमेर जिले के राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सक संघ के निर्विरोध अध्यक्ष पद को सुशोभित करते रहे।

दिनांक 11 मार्च को श्री टोडरमल स्मारक भवन में एक शोक सभा का आयोजन किया गया, जिसमें डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल सहित श्री शान्तिकुमारजी पाटील, श्री विपिनजी शास्त्री, श्री ताराचंदजी सोगानी, श्री वीरेशजी जैन, श्री नरेन्द्रजी शर्मा (जिला चिकित्सा अधिकारी, अजमेर) आदि अनेक वक्ताओं ने उन्हें भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की। इस अवसर पर पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल एवं श्री गुलाबचन्दजी जैन ललितपुर भी मंचासीन थे। सभा की अध्यक्षता ट्रस्ट के अध्यक्ष श्री सुशीलकुमारजी गोदीका ने और संचालन पण्डित पीयूषजी शास्त्री ने किया।

अनुभव भारिल्ल परिवार की ओर से आपकी स्मृति में 1,11,100/- की दान राशियों की घोषणा की गई। इसके अतिरिक्त आपकी सुपुत्री श्रीमती अनुभूति जैन धर्मपत्नी श्री वीरेशजी जैन की ओर से भी 21 हजार रुपये की दान राशि घोषित की गई।

दिवंगत आत्मा शीघ्र ही अनंत अतीन्द्रिय आनंद को प्राप्त हो - यही मंगल भावना है।

तत्त्वार्थमणि प्रदीप नि:शुल्क मंगायें

डॉ. उत्तमचंदजी भारिल्ल की स्मृति में अनुभव भारिल्ल परिवार की ओर से भारतवर्ष के सभी जिनमंदिरों को डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल द्वारा तत्त्वार्थसूत्र पर लिखित नवीनतम टीका 'तत्त्वार्थमणिप्रदीप' वितरित करने की घोषणा की गई है। कृपया पोस्टकार्ड लिखकर मंगा लेवें।

डॉ. पारसमल अग्रवाल सम्मानित

जैन लॉरियट पुरस्कार प्राप्त

दिल्ली : दिनांक 8 फरवरी को आयोजित एक सम्मान समारोह में ज्ञानसागर साइंस फाउन्डेशन की ओर से स्थापित इस पुरस्कार के अन्तर्गत डॉ. अग्रवाल को प्रशस्ति-पत्र एवं 2 लाख रुपये की नकद राशि प्रदान कर सम्मानित किया गया।

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट जयपुर द्वारा संचालित एवं
श्री दिगम्बर जैन कुन्दकुन्द कहान परमागम मंदिर ट्रस्ट
विश्वासनगर नई दिल्ली द्वारा आयोजित

48वाँ वीतराग-विज्ञान आध्यात्मिक शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर

दिनांक 18 मई 2014 से 4 जून 2014 तक

प्रतिवर्ष ग्रीष्मकाल में लगने वाला प्रशिक्षण शिविर इस वर्ष दिनांक 18 मई से 4 जून 2014 तक देश की राजधानी दिल्ली में आयोजित होने जा रहा है।

गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की 125वीं जन्मजयन्ती के अवसर पर दिल्ली में पहली बार लग रहे इस प्रशिक्षण शिविर में पधारने हेतु आप सभी को हार्दिक आमंत्रण है।

कृपया ध्यान दें - दिल्ली महानगर में आवास की व्यवस्था करना प्रयत्नसाध्य एवं व्ययसाध्य कार्य है; अत: आयोजन समिति ने यह निर्णय किया है कि जिन शिविरार्थियों के आवास फार्म 15 अप्रैल तक समिति के पास आ जावेंगे, समिति उनकी समुचित व्यवस्था कर सकेगी। **15 अप्रैल के बाद प्राप्त होने वाले आवास फार्मों पर विचार करना संभव नहीं होगा;** अत: प्रशिक्षण शिविर में आने वाले प्रशिक्षणार्थियों/शिविरार्थियों से निवेदन है कि वे अपने आवास फार्म 15 अप्रैल के पहले दिल्ली/जयपुर भिजवाने का कष्ट करें।

आवास फार्म www.kundkundtrust.com/kundkundtrust.org पर उपलब्ध है। आप ई-मेल, डाक द्वारा या निम्न पतों पर संपर्क करके भी मंगा सकते हैं। ये फार्म आप वेबसाइट पर ऑनलाइन भी भर सकते हैं।

हार्दिक अनुरोध :- श्री टोडरमल दिग. जैन सिद्धांत महाविद्यालय हेतु छात्रों का चयन इसी प्रशिक्षण शिविर में होता है; अत: महाविद्यालय में प्रवेश हेतु अधिक से अधिक छात्रों को प्रेरणा देकर शिविर में भिजवायें।

संपर्क सूत्र - (1) श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-4, बापूनगर, जयपुर 302015 (राज.)
फोन-0141-2705581, 2707458 Fax : 0141-2704127
Email-ptstjaipur@yahoo.com website : www.ptst.in
(2) श्री दिगम्बर जैन कुन्दकुन्द कहान परमागम मंदिर ट्रस्ट, 2/76, भीम गली, विश्वास नगर, दिल्ली-32 फोन-9810094987, 9312558753, 9582883020, 9350222646 (मंगलसेन जैन), 9212199105 Email-kundkundtrust@gmail.com; website : www.kundkundtrust.com, www.kundkundtrust.org

आत्मार्थी छात्रों के लिए अपूर्व अवसर

आत्मार्थी छात्र डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के सान्निध्य में रहकर चारों अनुयोगों के माध्यम से जैनधर्म का सैद्धान्तिक अध्ययन कर सकें तथा साथ ही संस्कृत, न्याय, व्याकरण आदि विषयों का आवश्यक ज्ञान प्राप्त करें – इस महत्त्वपूर्ण उद्देश्य से जयपुर में विभिन्न ट्रस्टों के सहयोग से श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय चल रहा हैं, जिसमें पूरे देश के विभिन्न भागों से आये छात्र अध्ययन कर रहे हैं।

अबतक 648 छात्र शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण करके शासकीय एवं अर्द्धशासकीय सेवाओं में रहकर विभिन्न स्थानों में तत्त्वप्रचार की गतिविधियाँ संचालित कर रहे हैं, जिनमें से 76 छात्र जैनदर्शनाचार्य की स्नातकोत्तर परीक्षा उत्तीर्ण कर चुके हैं। अनेक छात्र पी.एच.डी./नेट/जे.आर.एफ. आदि भी कर चुके हैं।

ज्ञातव्य है कि यहाँ प्रवेश पानेवाले छात्रों को जगद्गुरुरामानन्दाचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय की जैनदर्शन (त्रिवर्षीय शास्त्री स्नातक) कोर्स की परीक्षायें दिलाई जाती हैं, जो पूरे देश में बी.ए. के समकक्ष हैं तथा सरकार द्वारा आई. ए. एस., कैट, मैट, जे.आर.एफ. जैसी किसी भी सर्वमान्य प्रतियोगिता परीक्षा में सम्मिलित होने के लिये मान्यता प्राप्त हैं।

शास्त्री परीक्षा में प्रवेश के पूर्व छात्र को दो वर्ष का राजस्थान शिक्षा बोर्ड का उपाध्याय परीक्षा का पाठ्यक्रम पढ़ाया जाता है, जो हायर सैकेण्ड्री (12वीं) के समकक्ष है। इसप्रकार कुल 5 वर्ष का पाठ्यक्रम है। इसके बाद यदि छात्र चाहें तो दो वर्ष का जैनदर्शनाचार्य का कोर्स भी कर सकते हैं, जो (एम.ए.) के समकक्ष है।

उपाध्याय में प्रवेश हेतु किसी भी प्रदेश के माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की सेकेण्डरी (दसवीं) परीक्षा विज्ञान, गणित, सामाजिक विज्ञान व अंग्रेजी सहित प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण होना आवश्यक है।

यहाँ डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल, ब्र. यशपालजी जैन, पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील, डॉ. संजीवकुमारजी गोधा, डॉ. दीपकजी जैन, पण्डित पीयूषजी शास्त्री, पण्डित सोनूजी शास्त्री एवं पण्डित अनेकान्तजी शास्त्री के सान्निध्य में छात्रों को निरंतर आध्यात्मिक वातावरण प्राप्त होता है।

सभी छात्रों को आवास एवं भोजन की सुविधा निःशुल्क रहती है।

नया सत्र 30 जून 2014 से प्रारंभ होगा। स्थान अत्यंत सीमित है; अतः प्रवेशार्थी शीघ्र ही अपना प्रार्थना-पत्र अंक सूची सहित जयपुर प्रेषित करें।

यदि दसवीं का परीक्षाफल अभी उपलब्ध न हुआ हो तो पूर्व परीक्षाओं की अंक सूची की सत्यप्रतिलिपि के साथ प्रार्थनापत्र भेज सकते हैं। दसवीं का परीक्षा परिणाम प्राप्त होते ही तुरंत भेज दें।

प्रवेश योग्य समझा जाने पर उन्हें **दिल्ली में 18 मई से 4 जून, 2014 तक** होनेवाले ग्रीष्मकालीन प्रशिक्षण शिविर में साक्षात्कार हेतु बुलाया जायेगा, जिसमें उन्हें प्रारंभ से अन्त तक रहना अनिवार्य होगा।

पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, प्राचार्य, श्री टोडरमल दिग. जैन सिद्धांत महाविद्यालय,
ए-4, बापूनगर, जयपुर-302015 (राज.) फोन :(0141) 2705581, 2707458,
फैक्स - 2704127 Email-ptstjaipur@yahoo.com